विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ४, गुरुवार, तारीख १४-८-१९८०
वचनामृत-८१, १०० प्रवचन-७

जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं, तथापि वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है, वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें, तथापि वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है। वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है। परमाणु पलटकर वर्ण-गन्ध-रस -स्पर्श से रहित नहीं होता, वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता। यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर तो (पर से) पृथक्ता हो॥ ८१ ॥

वचनामृत। ८१ बोल। किसी ने लिखा है कि यह पढ़ना। यह कागज अन्दर पड़ा था, वह पढ़ने हैं। किसी ने लिखा होगा। **जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं,...** क्या कहते हैं ? स्फटिकमणि का ऐसा स्वभाव है, निर्मल, परन्तु पर्याय में ऐसी योग्यता है (कि) लाल आदि फूल हो तो पर्याय में योग्यता है। फूल से नहीं होता। लकड़ी के नीचे फूल रखो तो नहीं होता क्योंकि उसकी योग्यता नहीं है। स्फटिक की पर्याय की योग्यता में लाल-पीले फूल के संयोग से अपने से अन्दर लाल-पीली झांई दिखती है, वस्तु स्वरूप ऐसा नहीं है। वस्तु निर्मल है।

जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं,... आहा..! रंग दिखते हैं, है नहीं। अन्तर स्वरूप में नहीं है। जैसे निर्मलता...

जेम निर्मलता रे स्फटिक तणी, तेम ज जीव स्वभाव रे...
जेम निर्मलता रे स्फटिक तणी, तेम ज जीव स्वभाव रे...
श्री वीरे धर्म प्रकाशियो, श्री जिनवीरे धर्म प्रकाशियो,
प्रबल कषाय अभाव रे...

कषाय के अभाव में भगवान ने धर्म बताया। अर्थात् वीतरागभाव की पर्याय प्रगट करने को धर्म बताया। चारों अनुयोग का सार, चारों अनुयोग है, उसका सार, पंचास्तिकाय की १७२ गाथा में कहा है कि चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। कोई कहे कि कथानुयोग में ऐसा आया है, फलाने में ऐसा आया है। वहाँ पाठ है। पंचास्तिकाय १७२ गाथा। संस्कृत है। चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। वीतराग पर्याय है। चारों अनुयोग का सार वीतराग पर्याय है। वीतरागपर्याय, वीतरागस्वभाव में से प्रगट होती है।

जैसे स्फटिक निर्मल है, वैसे भगवान अन्दर निर्मलानन्द प्रभु, एक समय की पर्याय के सिवा आनन्दकन्द निर्मलानन्द, उसमें रंग, गन्ध कुछ नहीं है। उस निर्मलता में दृष्टि देने से वीतरागपर्याय जैसे कहा, चारों अनुयोग का सार वीतरागता है। कोई कहे कि कथानुयोग में व्यवहार कहा है, फलाना कहा है, ढिकना कहा है। वह सब कहा है। १७२ गाथा, पंचास्तिकाय। मूल पाठ (है)। वीतरागपर्याय है पूरा सार। वीतरागपर्याय उत्पन्न होती है कैसे? वीतरागपर्याय चारों अनुयोग का सार, उत्पन्न कैसे होती है? वीतरागभाव आत्मा है, उसमें से उत्पन्न होती है। आहाहा!

चारों अनुयोगों का सार आत्मा चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु, उसका अवलम्बन और आश्रय लेना, वह चारों अनुयोगों का सार है। आहाहा! समझ में आया? पाठ है। कोई कहे कि द्रव्यानुयोग में अमुक है और कथानुयोग में व्यवहार प्रधान है, चरणानुयोग में व्यवहार से लाभ हो ऐसा है। सब कथन के कोई भी प्रकार हो, परन्तु सार तो वीतरागता है। वीतराग धर्म है। वीतराग धर्म है तो वीतरागीपर्याय, प्रथम सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में (होता है), वह वीतरागीपर्याय है। सम्यग्दर्शन कोई चीज़ ऐसी नहीं है कि श्रद्धा करके मान लिया। सम्यग्दर्शन वीतरागीपर्याय और वीतरागी आनन्द के अंश का स्वाद है।

मुमुक्षु :- वीतराग पर्याय भी है और वीतराग।

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्वाद है। उसका कारण कि अनन्त गुण है न? अनन्त गुण पर दृष्टि देने से अनन्त गुण की पर्याय में व्यक्तता, सर्व गुण की व्यक्तता, अनन्त गुण की एक समय की व्यक्तता प्रगट होती है। एक ही गुण की प्रगट होती है, ऐसा नहीं। जितने गुण है, सब गुण की पर्याय व्यक्त होती है। अयोग नाम का गुण है कि जो चौदहवें गुणस्थान

में अयोग होता है, वह चौथे गुणस्थान से अयोगगुण की पर्याय की व्यक्तता एक अंश से प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? निर्मलानन्द प्रभु... कहा न?

स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं, तथापि वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है,... स्फटिक में रंग आया नहीं। वैसे राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकल्प की जाल पर्याय में दिखे। वस्तु में नहीं है। वस्तु तो निर्मलानन्द स्फटिक जैसी है। वीर ने ऐसा प्रकाश किया। 'जेम निर्मलता स्फटिक तणी, तेम जीव स्वभाव, श्री जिनवीरे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव...' कषाय का अभाव कहो या वीतरागभाव कहो। आहाहा! प्रथम सम्यग्दर्शन की शुरुआत से वीतरागता उत्पन्न होती है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! वीतराग अवस्था के बिना चौथा गुणस्थान आता नहीं। क्योंकि आत्मा वीतरागस्वरूप है, आत्मा त्रिकाल वीतरागस्वरूप है। तो वीतराग स्वरूप के अवलम्बन से पर्याय में वीतरागता का अंश आता है। अरे..! वीतरागता का अंश क्या, अयोग नाम के गुण का भी एक अंश प्रगट होता है। आहाहा! चौदहवें गुणस्थान में अयोग होता है। एक अंश नीचे सम्यग्दर्शन में प्रगट होता है। क्यों? सर्व गुणांश ते समकित।

समकित अर्थात् क्या? सर्व गुणांश ते समकित। जितने गुण संख्या से, उन सर्व गुण का एक अंश व्यक्त हो, उसका नाम समकित है। सर्व गुणांश ते समकित। समकित की एक ही पर्याय प्रगट होती है, ऐसा नहीं। समकित की पर्याय प्रगट होती है, आनन्द की होती है, शान्ति की होती है। शान्ति अर्थात् चारित्र, चारित्रगुण आत्मा में त्रिकाल है। उसका एक अंश स्थिरता होती है। वीर्यगुण। वीर्य स्वरूप की रचना करे, शुद्ध रचना करे, वीर्य भी एक अंश प्रगट होता है। चौथे गुणस्थान में सर्व अनन्त गुण का एक अंश प्रगट होता है। यह वाक्य कहा, वह श्रीमद् का कहा। सर्व गुणांश ते समकित।

अपने में रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। टोडरमल। टोडरमल की रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लिखा है कि चौथे गुणस्थान में ज्ञानादि अनन्त गुण का अंश प्रगट होता है। ऐसा पाठ है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में पीछे डाला है। आहाहा! जितनी संख्या अनन्त अनन्त गुण की है, प्रभु का स्वीकार होने से, प्रभु के सन्मुख होने से पर्याय और राग के विमुख होने से अनन्ता अनन्ती संख्या गुणवाली जो चीज़, उसमें प्रत्येक गुण का अंश, अनन्त-अनन्त गुण है, अनन्त-अनन्त गुण का अंश पर्याय में व्यक्तपने प्रगट अनुभव में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

निर्मल स्फटिक मणि जैसा भगवान है। आहाहा! रंग आदि तो पर्याय में है। पर्याय में रंग है, वह भी रंग के कारण नहीं है। स्फटिक की योग्यता के कारण है। समझ में आया? आहा..! बात ऐसी है। बात-बात में अन्तर है, प्रभु! लाल और पीला फूल है, इसलिए यहाँ लाल-पीला प्रतिबिम्ब उठा, ऐसा नहीं है। स्फटिक की पर्याय का ऐसा स्वभाव है।

जैसे लोहा... दियासलाई लो, दियासलाई से बीड़ी पीते हैं तो इस ओर अग्नि है और इस ओर शांति है। दियासलाई पूरी उष्ण नहीं होती। ऐसे लकड़ा हो पाँच हाथ लम्बा, अग्नि में रखो तो इतना गरम होगा, जितना है उतना। पूरा गरम नहीं होगा क्योंकि योग्यता नहीं है। परन्तु लोहे का पाँच हाथ लम्बा टुकड़ा हो, वह यदि थोड़ा भी अग्नि में हो तो भी पूरा गरम हो जाता है। पूरा उष्ण हो जाता है। वह अपनी योग्यता है, अग्नि से होता है - ऐसा नहीं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु!

प्रत्येक गुण की पर्याय चौथे (गुणस्थान में) प्रगट होती है। योग्यता का कारण कहा। आहा..! मार्ग अलग है, प्रभु! ये तो शान्तरस का मार्ग है। शान्ति.. शान्ति.. शान्ति। कषाय के भाव का अभाव। भले एक अंश अनन्तानुबन्धी का अभाव। परन्तु अनन्त मिथ्यात्व और मिथ्यात्व के साथ कषाय अनन्तानुबन्धी है। पहले कषाय को अनन्तानुबन्धी क्यों कहा? कि अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व के साथ सम्बन्ध है, इसलिए अनन्तानुबन्धी कहा। जहाँ मिथ्यात्व गया, स्वरूप निर्मलानन्द मेरा स्वभाव त्रिकाल निर्मल स्वभाव है। ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ स्थिरता का अंश भी साथ में आया। क्योंकि अनन्तानुबन्धी कषाय चारित्रमोह की प्रकृति है। अनन्तानुबन्धी की प्रकृति चारित्रमोह की है। उसके जाने के बाद कुछ तो चारित्र होगा या नहीं? चारित्र नाम भले नहीं देते, लेकिन स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है। कोई ना कहता हो तो उसे मालूम नहीं है। सम्यग्दर्शन में स्वरूपश्रद्धा, स्वरूपज्ञान और स्वरूपआचरण तीनों प्रगट होते हैं।

यहाँ कहते हैं, स्फटिक का निर्मल स्वभाव है, वैसे भगवान का निर्मल स्वभाव है। **वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है,...** वैसे आत्मा में राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकल्प की जाल हो, परन्तु स्वरूप वैसा हुआ नहीं। शुद्ध स्वरूप वैसा हुआ नहीं। वह तो पर्याय में ऐसा हुआ है। ऊपर-ऊपर वैसा हुआ है। अन्दर तल में उसका स्पर्श नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा, उसका जो तल अन्दर पूर्ण है, उसमें राग-द्वेष का प्रवेश नहीं।

वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें,... क्रोध, मान, माया अनादि से दिखाई देते हैं, परन्तु वह पर्याय में दिखाई देते हैं; वस्तु में नहीं। आहाहा! भ्रम से देखता है, वह भी पर्याय में है, वस्तु में नहीं। वस्तु तो निर्मलानन्द परमात्मस्वरूप अतीन्द्रिय सर्वांग आनन्द से भरा हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर परिपूर्ण है। आहाहा! दिखाई देते हैं। कैसे ? जैसे स्फटिक में रंग दिखाई देते हैं, वैसे भगवान आत्मा में, कर्म से नहीं। जैसे उस रंग से प्रतिबिम्ब नहीं उठता। क्या कहा ? रंग का फूल आया, इसलिए वहाँ प्रतिबिम्ब उठता है, ऐसे नहीं। उसकी योग्यता से वहाँ पर्याय हुई है। आहाहा! ऐसे आत्मा में पर्याय में जो क्रोध, मान है, वह कर्म से नहीं हुआ है। अपनी योग्यता से उत्पन्न हुआ है। आहाहा! तीनों चीज़ अलग है। एक कर्म अलग, विकार की पर्याय अलग। आहाहा! स्फटिक रत्न जैसा चैतन्यस्वभाव निर्मलानन्द, वह तो बिल्कुल भिन्न है। अरे..! ऐसा जो भगवान तेरे पास है। बहिन के वचन में एक जगह आता है। तेरे पास तू आनन्द का नाथ है। तू ही आनन्द कानाथ है, पास क्या ? तेरी नजर वहाँ नहीं जाती और बाहर में इसका ऐसा और उसका वैसा। बाह्य क्रियाकाण्ड में रुककर वहाँ अटक गया।

यहाँ कहा कि **आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें, तथापि...** तो भी **वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है।** आहाहा! द्रव्य कभी रागरूप होता नहीं। द्रव्य कभी संसार के कोई विकल्परूप होता नहीं। आहा..! ऐसा जो द्रव्यस्वभाव है, वह निर्मल स्फटिक जैसा है। कहते हैं, आत्मद्रव्य में क्रोधादि दिखते हैं, मानादि देखता है, उससे भिन्न है। वास्तव में तो ऐसी चीज़ है कि अपनी रुचि नहीं होकर, अपने सिवा पुण्य और पाप के सूक्ष्म भाव, उसकी जिसको रुचि है, उसको स्वरूप प्रति द्वेष है, अरुचि है। जिसे राग की रुचि है, उसे प्रभु के प्रति अरुचि है। यहाँ प्रभु अर्थात् आत्मा कहते हैं। आहा..!

आनन्दघनजी श्वेताम्बर में हुए हैं। उन्होंने कहा है, अरुचि द्वेष स्वभाव। भगवान आनन्द के नाथ प्रति प्रेम नहीं है और यहाँ प्रेम है, राग का एक अंश भले शुभ हो, उसमें जो प्रेम लगा है, वह आत्मा के प्रति अरुचि / द्वेष है। यहाँ राग है, यहाँ द्वेष है। राग का राग है और आत्मा के प्रति द्वेष है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! भगवान! तेरी बात को क्या कहे ? भगवन् स्वरूप पूरा है। उसका पूरा स्वरूप भगवतस्वरूप है। यह तो चमड़ी, हड्डी दिखते हैं, वह कोई वस्तु नहीं है। वह तो जड़ में चली जाएगी। अन्दर चैतन्यरत्न हीरा।

आहाहा! उसमें जो विकार दिखाई देता है, विकार दिखता है, वह उसमें नहीं है। वह पर्याय में-एक समय की दशा में विकार है। वह कहते हैं, देखो!

क्रोध अनादि से दिखाई देते हैं। वह तो अनादि से दिखता है। पहले पर्याय में शुद्ध था और बाद में अशुद्ध हुआ, ऐसा है नहीं। क्या कहा? द्रव्य तो शुद्ध ही अनादि से है। परन्तु पर्याय भी अनादि से शुद्ध थी और बाद में अशुद्ध हुई, ऐसा है नहीं। क्या कहा, समझ में आया? फिर से कहते हैं। द्रव्य जो शुद्ध है, वह अनादि से है और पर्याय जो अशुद्ध दिखती है, वह कर्म से नहीं, अपनी योग्यता से ऐसी है परन्तु वह पर्याय में-अवस्था में है, स्वभाव में नहीं।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, नहीं। दूसरी अपेक्षा इसके सिवा लागू नहीं पड़ती। ऐसी वस्तु है, भैया! यह तो अन्तर की बातें हैं। जिसे बैठे, वह बैठाये, दूसरा क्या हो?

पर्याय में राग दिखता है, स्वभाव में नहीं और राग दिखता है, वह कर्म के कारण नहीं। आहाहा! स्फटिक का दृष्टान्त दिया न? लाल-पीला प्रतिबिम्ब उठता है, वह अपनी योग्यता से है। लाल-पीले फूल से हो तो इसके नीचे रख दे। इसके नीचे इसमें होना चाहिए। लकड़ी लो, लकड़ी। उसके नीचे फूल रखो तो प्रतिबिम्ब उठना चाहिए। उसकी पर्याय में योग्यता है। आहाहा!

मुमुक्षु :- पर्याय की योग्यता या द्रव्य की?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय की योग्यता है। द्रव्य तो जैसा है, ऐसा आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध है। आहाहा!

वास्तव में आत्मद्रव्य क्रोधादि विकार से। क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय वासना, भ्रम से भिन्न है। आहाहा! **वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है।** भगवान का वस्तु स्वभाव देखो तो मलिनता नहीं है। वह तो ऊपर पर्याय में मलिनता दिखती है। संसार पर्याय में है। संसार बाहर नहीं है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, दुकान संसार नहीं है और संसार द्रव्य में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? संसार है उसकी पर्याय में। संसरण इति संसार। यह शब्द पड़ा है। प्रवचनसार। अन्तर स्वरूप आनन्द का नाथ, चिदानन्द नाथ ध्रुव, उसमें

से संसरण अर्थात् हट जाए। हटकर राग में आ गया है। राग-द्वेष में आ गया। इसलिए संसरण इति संसार। वह संसार है। आहा..! और इस संसार का नाश करना है। कोई बाह्य संसार में स्त्री-पुत्र छोड़कर अकेला फिरे, कपड़े छोड़कर, ऐसा अनन्त बार किया। आहाहा!

अन्तर में जो पर्याय में क्रोध, मानादि की योग्यता है, वह स्वरूप में नहीं है। स्वरूप की दृष्टि करके, स्वरूप का ध्यान करके, स्वरूप में जाकर, स्वरूप की भेंट करके एकाकार होता है तो मलिनता छूट जाती है। दूसरा कोई उपाय है नहीं। आहाहा! **वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है।** एक दृष्टान्त दिया है। आहाहा!

जैसे **परमाणु पलटकर वर्ण-गन्ध-रस -स्पर्श से रहित नहीं होता,...** परमाणु एक है, वह कभी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गुण के बिना नहीं रह सकता। है? परमाणु पलटकर, पलटकर **वर्ण-गन्ध-रस -स्पर्श से रहित नहीं होता,...** आहाहा! क्या कहा? परमाणु का स्वभाव जो वर्ण, गन्ध, रस से रहित है, ऐसा कोई कहे तो ऐसे नहीं है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श उसका स्वभाव है। तो वह परमाणु वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित हो गया है, ऐसा कोई कहे तो द्रव्य का नाश हो गया। आहाहा! परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है। उसका पलटकर अभाव हो जाए, ऐसा तीन काल में नहीं है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा,... आहाहा! अनन्त ज्ञान, दर्शन आनन्द से भरा है, वह पलटकर कभी विकार नहीं होता। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! परमाणु जैसे वर्ण, गन्ध, रस से रहित हो सके नहीं, अनादि-अनन्त परमाणु में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श अनादि-अनन्त है। वैसे यह भगवान आत्मा अनादि-अनन्त आनन्द और शान्ति से भरा तत्त्व है। उसमें मलिनता है नहीं। आहाहा! परमाणु रंग बिना होता नहीं, वैसे भगवान राग बिना ही होता है। आहाहा! रागसहित होता तो... राग पर्याय में है, परन्तु वस्तु में राग है नहीं। क्रोध है नहीं, मान है नहीं। भ्रमणा भी उसके अन्दर नहीं है। भ्रमणा सब पर्याय में है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म पड़ा। वस्तु ऐसी है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो सब भगवान है, भाई! भगवान ही है। वह तो एक पर्याय में राग की एकता, जो उसकी योग्यता है, योग्यता तो उसकी है, कर्म से नहीं है। जैसे स्फटिक में प्रतिबिम्ब उठा है, लाल-पीले फूल है उससे नहीं, अपनी योग्यता से हुई है। वैसे यह विकार कर्म से नहीं, अपनी योग्यता से विकार है। परन्तु प्रभु तो त्रिकाल निर्मलानन्द है। परमाणु

पलटकर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित होता नहीं। वैसे तीन लोक का नाथ प्रभु पलटकर रागरूप कभी होता नहीं। आहाहा! ऐसा वस्तु स्वभाव (है)। किसके साथ वाद करे? वाद-विवाद भी कहाँ है? नियमसार में आगे प्रभु ने कहा है, आहाहा! चीज़ ऐसी है।... ऐसा पाठ है नियमसार का। अनेक प्रकार के जीव, अनेक प्रकार की उसकी लब्धि का उघाड़, अनेक प्रकार के जीव। नाना प्रकार के कर्म अर्थात् कर्म भिन्न-भिन्न है। स्वसमय और परसमय के साथ वाद मत करना। नियमसार में पाठ है। क्योंकि वह चीज़ तो अनुभव की चीज़ है। आहा..! वाद करने जाएगा तो व्यवहार के बहुत वचन आते हैं, उसे आगे रखेगा। आहाहा! गाथा में कहा है। स्वसमय और परसमय के साथ वाद-विवाद करना नहीं। स्वसमय से भी। आहाहा! जैनधर्म में रहकर भी जैनधर्म के लोगों के साथ वाद-विवाद नहीं। वह वस्तु ऐसी अगम्य है, प्रभु!

वह यहाँ कहते हैं। **परमाणु पलटकर...** आहाहा! वर्ण अर्थात् रंग, गन्ध, रस, स्पर्श रहित नहीं होता। **वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता।** भगवान चैतन्य आनन्दस्वरूप.. आहाहा! परमाणु रंग से अरंग नहीं होता, वैसे भगवान आत्मा निर्मलानन्द त्रिकाल से कभी विकाररूप नहीं होता। वस्तु विकाररूप नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो वस्तु की श्रद्धा की बात है। अनुभव की बात है। आहाहा! **वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता।** जैसे परमाणु का वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श पलटकर क्या हो जाए? परमाणु अरूपी हो जाए? वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श से रहित हो तो अरूपी हो जाए? कभी होता नहीं। वैसे भगवान तीन लोक का नाथ, चैतन्यज्योति जलहल ज्योति स्वयं ज्योति सुखधाम, वह पलटकर क्या हो जाए? क्या राग हो जाए? जड़ हो जाए? आहाहा! आहाहा! ऐसी चीज़ प्रभु तेरे पास है, तू ही है। पास कहने में थोड़ा (भेद रहता है)।

यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। बहिन तो कहते हैं कि यह मैंने क्यों कहा? कि पर से एकत्व तोड़ने की बात है। विकार आत्मा में नहीं है और विकार पर्याय में है, एक समय की पर्याय में है, यह बात क्यों कही? कि विकार तोड़ने को कहा। क्योंकि विकार हमेशा का नहीं है, वस्तु नित्य है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप त्रिकाली है, अनादि-अनन्त है और विकार है, वह क्षणिक एक समय का है। जैसे परमाणु पलटकर वर्ण रहित नहीं होता, वैसे भगवान पलटकर कभी विकाररूप नहीं होता। चाहे

तो निगोद में चला जाए। निगोद में अंगुली के असंख्य भाग में, असंख्यवें भाग में। असंख्य औदारिक शरीर है। निगोद। एक शरीर में अनन्त गुना जीव है। एक-एक जीव में साथ में दो-दो शरीर है। तैजस और कार्माण। आहाहा!

एक अंगुली के असंख्य भाग में असंख्य तो निगोद के औदारिक शरीर है। आहाहा! और एक-एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव है और एक-एक जीव को दो-दो शरीर साथ में है। सबकी संख्या अंगुली का असंख्यवाँ भाग। गजब बात है! ऐसा कहकर क्या कहते हैं? कि क्षेत्र की कोई महिमा नहीं है। छोटा-बड़ा क्षेत्र नहीं, वस्तु का स्वभाव क्या है? आहाहा! बड़ा क्षेत्र हो तो बड़ी चीज़ कहने में आये, छोटा क्षेत्र हो तो छोटी कही जाए, ऐसा नहीं है। छोटी-बड़ी कोई क्षेत्र से नहीं है। आहाहा!

जितने गुण आकाश में है, अनन्तानन्त। तीन काल के समय से अनन्त गुना। उतने गुण एक परमाणु में है। अरे.. प्रभु! क्योंकि द्रव्य है न? जितने गुण आकाश में है, उतनी (गुणों की) संख्या एक परमाणु में है। आहाहा! उतनी (गुणों की) संख्या आत्मा में है। परमाणु में जड़ है। भगवान सब चेतन है। आहा..! वह स्वभाव कभी पलटता नहीं।

यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। यह बात क्यों की? कि राग और स्वभाव दोनों बिल्कुल भिन्न है। बिल्कुल भिन्न है। राग से कुछ भी लाभ हो, शुभराग करते-करते अन्दर में प्रवेश होगा, वह बात बिल्कुल झूठ है। पहले शुभराग करे, शुभराग करते-करते अन्दर में जाना होगा। दुःख करते-करते सुख में जाना होगा, ऐसा है। दुःख वेदते-वेदते आनन्द में जाना होगा, ऐसी वह बात है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यहाँ बहिन कहती है, यह क्यों कहा? **यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है।** आहा..! प्रभु! तेरे में आनन्द भरा है न, नाथ! तेरी पर्याय में जो थोड़ा विकार है, वह तो क्षणिक है। वह तो तेरी नजर फिरते ही टूट जाएगा। आहाहा! तेरी नजर फिरे, पर ऊपर तेरी नजर है, निधान पर नजर आये तो एक समय में टूट जाएगा। आहाहा! ऐसी ताकत है, प्रभु!

अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर... बहिन कहती है.. थोड़ा बोले थे, बहुत थोड़ा बोलती है। यह भी थोड़ा बोले होंगे, बहनों ने लिख लिया। इसलिए बाहर आया, नहीं तो बाहर भी नहीं आये। बाहर में मर गये हैं। आहाहा! **अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर...**

जिसमें विकार नहीं, निर्मलानन्द प्रभु, जैसे परमाणु पलटकर वर्णरहित नहीं होता, वैसे भगवान पलटकर, अनन्त ज्ञान-दर्शन पलटकर विकार नहीं होता। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चतुष्टय। जैसे परमाणु का वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श पलटता नहीं, वैसे आत्मा में अनन्त चतुष्टय भरा है। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। उस चतुष्टय से रहित आत्मा कभी होता नहीं, तीन काल में होता नहीं। ऐसा अन्दर में प्रवेश कर, प्रभु! ऐसा कहते हैं। तुझे महिमा लगती हो.. आहाहा! यह चीज़ महाप्रभु है। भले उसकी पर्याय में अनादि से विकार है परन्तु उसका अवधि कितना? एक समय। विकार की। अपनी मौजूदगी त्रिकाल है। आहाहा! त्रिकाली पर नजर कर, अन्तर प्रवेश कर। **तो (पर से) पृथक्ता हो।** तो पर से पृथक अर्थात् जुदा हो जाए, भेदज्ञान हो जाए। आहाहा!

कषाय का अंश ऊपर-ऊपर है और अन्दर की चीज़ में तो अकेला माल-आनन्द का माल भरा है। अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय वीर्य, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय प्रभुता, अतीन्द्रिय प्रभुता ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का दल-पिण्ड पड़ा है। आहाहा! उसमें प्रवेश कर, प्रभु! आहाहा! उस चीज़ की ओर नजर कर। चाहे कोई भी निगोद का भव किया, परन्तु उसका द्रव्य तो जो है सो है। आहाहा! निगोद का भव। एक अक्षर के अनन्तवें भाग विकास है। फिर भी द्रव्य तो परिपूर्ण परमात्मस्वरूप ही पड़ा है। आहाहा! आहाहा

अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर तो (पर से) पृथक्ता हो। तो पर से भिन्नता हो जाएगी। ८१ (पूरा हुआ)। उसके बाद? १००। कोई लिखनेवाले ने लिखा है। किसी ने रखा था।

'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ'—इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। 'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये' इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है॥ १००॥

१००। **'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ'...** मुक्त सिद्ध होते हैं, वह सादि-अनन्त सिद्ध है। सिद्ध होते हैं, वह सादि-अनन्त है। प्रभु अनादि-अनन्त है। आहाहा! मुक्तदशा सादि—शुरुआत है, फिर अन्त नहीं है। सादि-अनन्त है। और प्रभु आत्मा है, वह तो अनादि-अनन्त है, उसकी आदि भी नहीं और अन्त नहीं है। इसकी तो आदि होगी, सिद्ध की सादि हो गयी। सिद्ध पर्याय जब होगी, तब आदि हो गयी। आत्मा में ऐसा है नहीं। आहाहा! **'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ'..** आहाहा! अनादि-अनन्त मुक्त हूँ। कभी बँधा नहीं। आहाहा! अन्तर में बैठाने की बात है, प्रभु! अन्तर में दृष्टि करके, रुचि करके, पोषण करके अनुभव करने योग्य यह है। बाकी तो सब दुनिया की बातें बहुत है।

इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से... शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से **शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।** आहाहा! शुद्ध पर दृष्टि देने से.. वह तो समयसार में गाथा है। ... शुद्ध होता है, ... अशुद्ध होता है। गाथा है, समयसार में। आत्मा त्रिकाली शुद्ध है, ऐसी दृष्टि करे और अन्दर करे तो वह शुद्ध हो जाता है। और आत्मा को अशुद्ध माने तो वह चारों गति में अशुद्ध रहता है। समयसार में दो गाथा है। आहा..! यहाँ कहा, **'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ'...** आहाहा! **इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।** शुद्ध पर्याय कोई दूसरे प्रकार से प्रगट नहीं होती। आहाहा! अनादि-अनन्त ध्रुव भगवान, जिसमें पर्याय का बदलना भी नहीं है, उस पर दृष्टि देने से पर्याय प्रगट होती है-शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

शक्तिरूप तो है, ऐसा कहने में आता है। ध्रुव में सब पर्याय की शक्ति तो है। क्यों? कि जितनी पर्याय होती है, वह पर्याय एक समय रहकर विलय होती है। विलय-नाश होती है। नाश कहाँ से हो? सत् है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। व्यय भी सत् है। आहाहा! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तो व्यय भी सत् है। तो नाश होकर कहाँ जाए? व्यय होकर अन्दर द्रव्य में प्रवेश करती है। व्यय की पर्याय नाश होकर द्रव्य में जाती है। आहा..! है न? **शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।** क्योंकि पर्याय शक्तिरूप तो अन्दर सब पड़ी है। परन्तु अन्तर उसका स्वीकार.. ओहो! गहराई में उसका स्वीकार करने से, पर्याय के तल में जाने पर जो परमात्मा पूर्ण स्वरूप विराजता है, वह द्रव्य तो मुक्त है। तेरे ख्याल में आ जाएगा, तुझे आनन्द होगा। आहाहा! सम्यग्दर्शन में आनन्द होगा। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद

आना। आहाहा! क्योंकि अनन्त गुण है। सब गुण का अंश प्रगट होता है। तो आनन्द भी प्रगट होता है। स्वरूप की रचनावाला वीर्य भी प्रगट होता है। और प्रभुता, उसमें प्रभुता पड़ी है आत्मा में। समयसार में ४७ शक्ति है न। उसमें एक प्रभुता शक्ति है। आहाहा! उस प्रभुता शक्ति में से प्रभुता आती है। पर्याय में प्रभुता आती है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में प्रभुता का अंश बाहर आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग!

'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये'... क्या कहा? मेरी दृष्टि तो द्रव्य पर-ध्रुव पर है। पर्याय होनेवाली होगी तो होगी। तेरे दरकार क्या है? मैं तो ध्रुव पर दृष्टि रखता हूँ। आहाहा! **'मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये'... 'द्रव्य तो मुक्त है,..'** उस पर दृष्टि देने से पर्याय में मुक्ति होगी ही। उसमें होगी ही। आहाहा! मुक्त भगवान, उसकी पर्याय मुक्त, अपूर्ण पर्याय मुक्त, पूर्ण पर्याय मुक्त, वस्तु मुक्त। आहाहा! क्या कहा? भगवान वस्तु मुक्त, उसका मार्ग जो मोक्षमार्ग अन्दर है, अल्प है, वह भी मुक्त और पूर्ण सिद्धदशा, वह भी मुक्त। उसका मुक्त के साथ सम्बन्ध है। राग के साथ एक समय का सम्बन्ध है, वह कोई मूल चीज़ नहीं है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! दुकान चलानी, यह सब करना, इसका समय कब मिले? बापू! ये तो समय है। आहाहा! समय एक बार आयेगा और देह छूट जाएगा। ऐसा समय आयेगा कि मालूम नहीं पड़ेगा, बैठे-बैठे देह छूट जाएगा, एकदम से। अभी यहाँ एक लड़का था, दस साल का। ऐसे बैठा था। कुछ नहीं था। कहने लगा, मुझे गले में कुछ है। कोई व्याधि बताई थी। बैठा था, कुछ नहीं। दस मिनिट में देह छूट गया। पहले हीराभाई के मकान में रहते थे। हीराभाई के मकान में रहते थे न, उनके लड़के का लड़का, उसका लड़का। उसका नाम कुछ होगा, कुछ कहते थे।

यहाँ तो कहते हैं, जैसे वह रोग क्षण में देह का अन्त लाता है; वैसे तीन लोक के नाथ के सन्मुख देखने पर (संसार का) क्षण में नाश होकर मोक्ष होता है। आहाहा! अरे..! वह चीज़ क्या है? अन्दर कौन कितनी ताकत और क्या शक्ति है? आहा..! जिसकी तुलना सिद्ध के साथ भी नहीं। सिद्ध की पर्याय के साथ नहीं, द्रव्य के साथ है। आहाहा! सिद्ध की पर्याय जैसी अनन्ती पर्याय तो एक-एक गुण में पड़ी है। ऐसा द्रव्यस्वभाव। आहाहा!

'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये'... आहाहा! बहिन आये नहीं है अभी। दोपहर को आयेंगे। शरीर में कमजोरी है। सिद्ध की पर्याय होनी हो तो हो,

मुझे क्या ? मैं तो त्रिकाली आनन्दकन्द ध्रुव हूँ। आहाहा! ऐसा कहते हैं। मैं तो त्रिकाली अनादि-अनन्त आनन्द, वीर्य, शान्ति और प्रभुता का पिण्ड भरा है। सिद्धपर्याय आनेवाली होगी तो आयेगी। आहाहा! उसकी भी हमको परवाह नहीं है। हमने तो अन्दर प्रभु देखा है। ध्रुवस्वरूप ध्रुव भगवान। उस दृष्टि के समक्ष सिद्ध की कोई कीमत नहीं है।

इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति... इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन। त्रिकाली ध्रुव भगवान का आलम्बन। कोई बाह्य आलम्बन से वह प्रगट हो, ऐसी चीज़ है नहीं। भगवान का आलम्बन है... विवाद होता है न ? स्थानकवासी और मन्दिरवासी में। श्वेताम्बर कहे कि आलम्बन चाहिए, वह कहता है आलम्बन नहीं चाहिए। बाहर का आलम्बन। यहाँ तो बाहर का आलम्बन काम नहीं करता। कोई आलम्बन नहीं है। निरालम्बी भगवान त्रिलोकनाथ है। जिसको कोई अपेक्षा लागू पड़ती नहीं। आहाहा! **इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति...** पर्याय के प्रति उपेक्षा। दरकार नहीं कैसी है। आहाहा!

मुमुक्षु :- ज्ञानी को मुक्ति नहीं चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- दरकार ध्रुव पर है। मुक्ति आती है। ध्रुव के जोर में कहते हैं। मेरा लक्ष्य ध्रुव पर है, मुक्ति आयेगी ही। आनेवाली आयेगी तो आयेगी ही। मुक्ति की अनन्त-अनन्त पर्याय जिसमें भरी है। आहाहा! एक केवलज्ञान की एक पर्याय सादि-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय सादि-अनन्त एक ज्ञानगुण में पड़ी है। भगवान आत्मा का एक ज्ञानगुण, उसमें सादि-अनन्त जो केवलज्ञान, कभी अन्त नहीं। एक पर्याय (ऐसी) अनन्त पर्याय उससे अनन्तगुनी अन्दर पड़ी है। आहाहा! अरे.. ! प्रभु! तूने आत्मा देखा नहीं, आत्मा को जाना नहीं। आत्मा किसे कहना ? आहाहा! यह बात विस्मृत हो गई है और दूसरे रास्ते पर चढ़ गई है। प्रवृत्ति के रास्ते पर चढ़ गई है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति...** पर्याय चाहे तो मोक्षमार्ग की हो, परन्तु पर्याय के प्रति उपेक्षा (है)। क्योंकि पर्याय को भी परद्रव्य कहा है। ५०वीं गाथा। समझे ? नियमसार। पर्याय को परद्रव्य कहा है। स्वद्रव्य मेरा यहाँ है, तो परद्रव्य तो आयेगा ही। पर्याय उसमें से निकलकर आयेगी ही। आहाहा! निःसन्देह,

नि:शंक। जो पाया, वह गिर जाएगा, ऐसी शंका ज्ञानी को है नहीं। पंचम काल के प्राणी के लिये ऐसा लिया है। ३८ गाथा, ९२ गाथा। मूल पाठ में ऐसा लिया है कि श्रोता अप्रतिबुद्ध था, उसे समझाया और समझा तो वहाँ तक कहा, हमारा ज्ञान और दर्शन अप्रतिहत है। गिरेगा नहीं। शंका नहीं है। पंचमकाल का प्राणी-श्रोता को प्रगट हुआ, वह ऐसी दशा है। कदाचित् एकाध भव हो, उसका कुछ नहीं। आहाहा! चीज़ तो यह है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- पत्र ऐसा है न। पत्र ऐसा है न। देखो न! **'मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये'...** आयेगी ही। जहाँ भगवान को-मूल को पकड़ लिया। वृक्ष के मूल को पकड़ लिया तो फल-फूल तो होंगे ही। जिसमें मूल पकड़ा, उसे फल-फूल तो होंगे ही। ऐसे भगवान आत्मा को पकड़ा, उसमें सिद्धपर्याय तो फल है। फल आकर ही छुटकारा है।

द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है। आहाहा! पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति, चाहे तो पर्याय चार ज्ञान की हो, क्षायिक पर्याय हो-क्षायिक समकित, परन्तु पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति। आहाहा! **पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है।** ऐसी वस्तु की स्थिति और मर्यादा है। वह तो पहले आ गया है अपने। जहाँ चैतन्य की पर्याय प्रगट हुई, उसकी यदि पूर्णता न हो तो जगत का नाश होगा। पूर्ण दृष्टि जहाँ हुई और वह साधकपना पूर्ण न हो, तो द्रव्य नहीं रह सकता। द्रव्य न रहे तो, सब द्रव्य नहीं रहते, तो जगत शून्य हो जाए। आहाहा! यह बात पहले आ गयी है। ऐसे आत्मा में जो साधकपना उत्पन्न हुआ, उसमें सिद्धपना आयेगा, आयेगा और आयेगा। सिद्धपना न आवे तो उस द्रव्य का नाश हो। साधकपना का अभाव होता है। साधक का फल साध्य-सिद्धपद आना चाहिए। वह नहीं आये तो साधक का नाश होने पर द्रव्य का नाश हो जाए। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)